International Journal of Advance and Applied Research
www.ijaar.co.in
ISSN – 2347-7075 Impact Factor – 8.141
Peer Reviewed Bi-Monthly
Vol. 12 No.2 Nov-Dec 2024

'हलफनामे' उपन्यास में अभिव्यक्त किसान संघर्ष

श्री कपिल नामदेव पवार
एम.एस्सी., एम.ए., बी.एड.
श्री आसारामजी भांडवलदार कला, वाणिज्य एवं विज्ञान महाविद्यालय, देवगांव रंगारी, तह.कन्नड,जि.छ.संभाजीनगर
Corresponding Author: श्री कपिल नामदेव पवार
Email: kapil.npawar15@gmail.com
DOI- 10.5281/zenodo.14249256

प्रस्तावना:

किसी भी कृति के रूप और अन्तर्वस्तु के द्वन्द्वात्मक सम्बन्ध द्वारा ही उस कृति की संरचनागत परख की जा सकती है। रूप के निर्धारण के लिए अन्तर्वस्तु की प्रमुखता पर जोर दिया जाता है इस सन्दर्भ में माक्र्सवादी साहित्यकार ''रॉल्फ फाक्स ने अपनी रचना 'द नॉवेल एण्ड द पीपुल (1937) में लिखा है, रूप की उपज अन्नतवस्तु से होती है, वह इससे जुड़ा भी होता है। हालांकि प्रमुखता अन्तर्वस्तु की ही होती है लेकिन रूप का अन्तर्वस्तु पर गहरा प्रभाव पड़ता हैऔर वह निष्क्रिय नहीं रहता।''1रूप और अन्तर्वस्तु के इस द्वन्द्वात्मक सम्बन्ध पर राजू शर्मा के उपन्यास 'हलफनामे' का अवलोकन करने पर हम देखते हैं कि ''यह उपन्यास अपने समकालीन यथार्थ के कथावस्तु के रूप में चयन के चलते कई मायनों में विशिष्ट हो जाता है क्योंकि विषयवस्तु के लिहाज से इस उपन्यास की भाषा वैसी ही संजीदा और चिंताग्रस्त है जैसा कि स्वयं यह विषय। उपन्यास को पढ़ते हुए हमारे मन में वैसा ही भय उत्पन्न होता है जैसा कि हलफनामे दाखिल करने और बाद की पूरी प्रक्रिया में मकई या कि अन्य स्तरों पर उसकी पत्नी, माँ व बच्चों के भीतर उत्पन्न होता है। यह भय कोई बाहरी भय नहीं है बल्कि हमारीही आन्तरिक चिन्ता का रूप है।''2

किसान जीवन की पृष्ठभूमि में लिखा गया यह उपन्यास, उपन्यास लेखन की परम्परा में एक नये चिंतन के साथ हमारे समक्ष उपस्थित होता है। ''किसानों की आत्महत्या के प्रसंग पर 'हलफनामे' हिन्दी का पहला उपन्यास है यह एक अजीब बात है कि यथार्थवाद का दिन-रात जाप करने वाले और 'आम जन' पर विशेषांक निकालने वाले लेखकों सम्पादकों का ध्यान अब तक किसानों की आत्महत्या' के इस यथार्थ पर नहीं गया।''3 यह उपन्यास किसान आत्महत्याओं के साथ-साथ सामाजिक विषमताओं, राजनीतिज्ञों की अवसरवादी चालों, प्रशासनिक तबके की उदासीनताओं, जलसंकट, न्यायिक व्यवस्था के जाल में फँसे व्यक्ति और उसके परिवार की मनःस्थिति का खाका हमारे सामने उपस्थित करता है। 'स्वामी राम प्रसाद' एक छोटा किसान है और उसका बेटा 'मकई राम' एक बिजली साज है। बेटे द्वारा खेती किसानी की जिम्मेदारी उठाने से मना कर देने पर भी बाप-बेटे में कोई द्वैत नहीं है। दोनों अपने-अपने काम पूरी निष्ठा से करते है। एक दिन अचानक मकईराम को खबर मिली कि उसके पिता ने आत्म हत्या कर ली है। वह अपने पिता की आत्महत्या के एवज में मुआवजे के लिए एक हलफनामा दाखिल करता है और यहीं से मकई की व्यवस्थित जिन्दगी में भू-चाल आने लगता है क्योंकि, धीरे-धीरे उसकी मुआवजे की अपील एक 'केस' का रूप धारण कर लेती है। किसान आत्महत्याओं के लिए मुआवजे की स्कीम की घोषणा एक सत्तालोलुप मुख्यमंत्री राज्य में चुनाव की नज़दीकी को देखते हुए महज इसलिए कर देता है क्योंकि, दूसरे राज्यों जहाँ आत्महत्या की घटनाएँ बराबर घटरही थी, वहाँ ऐसी कोई योजना नहीं थी और यहाँ अभी तक एक भी किसान आत्महत्या की घटना नहीं घटी थी। राज्य में किसान आत्महत्या की एकमात्र घटना होने और मुआवजे की मांग करने से बिजलीसाज़ मकई देश के अन्य राजनीतिक दलों की राजनीति को आगे खिसकाने का ज़रिया बन गया।

जल की लगातार होती कमी इस उपन्यास की केन्द्रीय समस्या है किसान आत्महत्या का सवाल उसी से जुड़ा हुआ है। मकई का पिता लगातार पानी की कमी या सूखे की समस्या से जूझ रहा था। कर्ज ले-लेकर लगातार तीन बोअरवेल डलवाये, फिर भी उनमें पानी न आने पर वह विचलित होने लगा क्योंकि, लाला का कर्ज भी बन गया और पानी की कमी भी दूर नहीं हुई। सरकार द्वारा इस गाँव को डार्क एरिया घोषित किये जाने के बाद भी लाला किसानों की जानकारी के अभाव का फायदा उठाकर उन्हे कर्ज देता था। स्वामी राम प्रसाद, पादरी और पनिया बाबा के सहयोग से इस जल संकट के कारणों से परिचित होनेे पर हाथ में नीला नक्शा लिये घूमता और लोगों को आगे बोअरबेल न डलवाने की सलाह देता था। लाला का व्यवसाय संकट में पड़ा तो लाला ने स्वामी राम प्रसाद की हत्या करवा दी और

बात फैलायी आत्महत्या की। उपन्यास, मीडिया और प्रशासन पर तंज कसता है कि किसान आत्महत्याएँ मीडिया को महज एक मसालेदार ख़बर लगती है और प्रशासन तंत्र को धन कमाने का एक सुनहरा अवसर।

साहित्य और समाज दोनों का अन्योन्याश्रित सम्बन्ध है। साहित्य समाज से ही विषयों को उठाता है जिससे समाज में घट रही घटनाओं और होने वाले परिवर्तनों के साथ ही साहित्य के स्वरूप में भी परिवर्तन आता है इसी सन्दर्भ में आचार्य रामचन्द्र शुक्ल ने कहा था कि, ''चितवृत्तियों में परिवर्तन के साथ-साथ साहित्य के स्वरूप में भी परिवर्तन होता चला जाता है।'4 समाज, साहित्य की नई प्रतिष्ठाओं और स्थापनाओं से अछूता नहीं रहता। प्रस्तुत उपन्यास में भी बदली सामाजिक वास्तविकताओं को बड़ी ही सूक्ष्मता से उभारा गया है जहाँ सामाजिक सम्बन्धों में आए बदलाव और मानवीय संवेदना के स्थान में हुए परिवर्तन प्रमुख हैं।

उपन्यास में ऊपरी तौर पर देखने पर 'जल' की समस्या ही अन्य समस्याओं का कारण दिखती है, किन्तु इस समस्या की वास्तविक जड़ है देश का ऐशो आराम से जीवन जीने वाला शासक-प्रशासक वर्ग जो गम्भीर समस्याओं की विकराल घड़ियों में भी सिर्फ अपनाउल्लू सीधा करता है। प्रदेश का मुख्यमंत्री चुनाव की नजदीकियों को देखते हुए अपनी दूरदृष्टि का प्रयोग करते हुए। शतरंज की विसात के रूप में किसान आत्माहत्याओं के बदले प्रदेश सरकार द्वारा मुआवजा दिये जाने की योजना (मूल नाम - किसान विपदा (आत्महत्या व अन्य कष्ट) निवास योजना) की घोषणा करता है क्योंकि अन्य राज्यों में किसान आत्महत्या की बहुत सारी घटनाएँ घट चुकी थीं पर वहाँ अभी तक इस प्रकार की कोई भी योजना शुरू नहीं की गयी थी। इस प्रदेश में अभी तक एक भी आत्महत्या की घटना सामने नहीं आयी थी। इस प्रकार मुख्यमंत्री के मन में यह योजना किसानों से सहानुभूति जताने के नाम पर राजनीति की रोटी सेंकने वाली भट्टी के रूप में थी। किसी की आत्महत्या भी स्वार्थ सिद्धि का साधन बन जाए अवसरवादी राजनीति का इससेसटीकउदाहरण और क्या हो सकता है।

पिता की आत्महत्या के बाद मुआवज़े की मांग करते ही मकई साधारण बिजली साज़ नहीं रह जाता बल्कि वह 'कामरेड मकई हो जाता है और तरह-तरह की गोष्ठियों में उसे स्टेज पर सम्मान दिया जाने लगता है। जिस मकई को कल तक वे जानते नहीं थे उसी पर बड़ी आत्मीयता से आज वे घण्टों भाषण दे रहे थे, दरअसल उसके द्वारा सरकार से की गयी मुआवजे की अपील, माक्र्सवादी संगठनों की राजनीति को जीवित करने का साधन है। वर्तमान दौर की माक्र्सवादी पार्टियों और उनके द्वारा किये जाने वाले क्रान्तिकारी कृत्यों के विषय में सुदर्शन मकई से कहता है कि अब ''क्रान्ति का रंग की लाल नहीं रहा। अब क्रान्ति मखमली होती है, नारंगी या जामुनी क्रान्ति; फूलों के नाम की क्रान्ति... और यह तर्क संगत भी है क्योंकि यह क्रांति प्रायोजित है, इसका इरादा बदलाव नहीं बल्कि विपरीतता को निगलना है। क्रान्ति के इस बाजार में अगर तुम दुश्मन हो तो तुम्हें खरीदा जाएगा और बदकिस्मती से अगर दोस्त हो, तो बेंच दिया जाएगा।''5 दरअसल तुच्छ राजनीति के फलने-फूलने और राजनेताओं के घृणित मनसूबों के कामयाब होने में जनता की निरीहता और उनकी जानकारियों का अभाव महत्वपूर्ण कारक हैं। ऐसी ही परिस्थितियों के सन्दर्भ में उपन्यास में कथन है कि ''गरीबी, भूख, रोग, झोपड़ पट्टी, विपदा और दमन बेरोजगारी और भुखमरी का होना जरूरी हैं क्योंकि इनके बिना वैभव और विलास का अगाध निर्माण असम्भव है।''6

हम इस उपन्यास के अध्ययन के दौरान इस सत्य से भली-भाँति परिचित होते चलते हैं कि जन समस्याओं और अवसरवादी राजनीति का चोली-दामन का साथ है।पूँजीवाद के प्रभाव में विश्वभर में विकास प्राप्ति की एक ऐसी लहर उठी है कि विश्व के विकासशील देश विकसित देशों की पूँजीवादी नीतियों को अपनाते हुए लगातार विकास यात्रा करने लगे हैं। उद्योग धन्धों में लगातार बढ़ोत्तरी से विकासशील देशों की विकास यात्रा का सबसे प्रभावशाली अंग कृषि व्यवस्था संकट में पड़ गयी है। क्योंकि, ''विश्व में शहरी और विशेष रूप से महानगरीय सभ्यता को अधिक महत्व दिया गया है और ग्रामीण सभ्यता की उपेक्षा हुई है। इसके कारण कृषि और किसान दोनों संकट ग्रस्त हैं। खेती करना पहले की अपेक्षा अधिक कठिन हो गया है। उद्योगों के प्रसार के चलते मंहगे संकर बीज, रासायनिक खाद तथा फसलों को बचाये रखने के लिए उन पर किए जाने वाले मँहगे कीटनाशकों के प्रयोग ने किसान की कमर तोड़ दी है और उत्पादन के नाम पर स्थिति वैसी ही बदहाल है। बदली तकनीक से खेती की सिंचाई अधिक मात्रा में करनी पड़ती है और पानी के लगातार गिरते जल स्तर के चलते बड़ी-बड़ी मंहगी मशीनों के द्वारा पानी निकालकर सिंचाई करने पर पर्याप्त खर्च पड़ता है। जिससे खेती किसान के लिए घाटे का सौदा बन गई है।

हमारे पूर्वज लगभग चार-पाँच हजार सालों से खेती करते आए हैं और देश में पायी जाने वाली विविधताओं के अनुसार परिवेश और वातावरण को ध्यान में रखते हुए अलग-अलग तरह की खेती का विकास किया है। देश में कहीं पहाड़ है, तो कहीं पठार, कहीं मैदान है, तो कहीं रेगिस्तान, कहीं बारिश अधिक होती है, तो कहीं सामान्य और कहीं बहुत कम। इस प्रकार इन सारी स्थितियों को ध्यान में रखते हुए अलग-अलग स्थितियों में अलग-अलग बीजों का चयन किया जैसे, धान की खेती देश भर में वातावरण के अनुसार अलग-अलग किस्मों की अलग-अलग क्षेत्रों में होती है। कपास की खेती वहीं होती है, जहाँ कपास पैदा होने की अनुकूल स्थितियाँ हैं। इनके साथ ही ऋतुओं की विविधता के अनुसार क्रम भी अलग किये गये। जिससे कि न पानी का

आवश्यकता से अधिक दुरुपयोग हो, न खेतों की मिट्टी खराब हो, और न ही पर्यावरण पर किसी प्रकार की कोई आँच आए। किन्तु आज के व्यावसायिक परिवेश में ''विकासशील कहलाने वाले देशों की सरकारों पर तथाकथित विकसित कहलाने वाले देशों का जबरदस्त दबाव है कि वे अपने लोगों के हित के नहीं बल्कि उन देशों को लाभ पहुँचाने वाले काम करें। इसके लिए आज के पूँजीवाद ने एक और भ्रामक शब्द गढ़ा है 'मुक्त बाजार' जबकि बाजार कभी मुक्त नहीं होता।''7 बाजार का अपना मूल स्वभाव होता है और वह केवल शोषण पर आधारित संस्था है। जिसमें प्रायः हर ऊपरी तबका अपने से निचले तबके का शोषण करता है। जिसका अन्तिम लक्ष्य बनती है आम जनता, और जब हमारे देश का देशी बाजार इस वैश्विक स्तर के बाजार से जुड़ता है तो, यहाँ पर शोषण का रूप भी वैश्विक हो जाता है। अमीर देश गरीब देशों का शोषण करने के साथ ही साथ उनमें अपना एक स्थायी बाजार भी खोजते हैं। जिसके सहारे उस गरीब देश पर वे अपना आधिपत्य स्थापित कर सकें।

बदली हुई सामाजिक परिस्थितियों में जब बाजार पूरी दुनिया को अपनी गिरफ्त में लिये हुए है तो इन स्थितियों से भारत कैसे अछूता रह सकता था। बाजारवाद और विश्व व्यापार संगठन की नीतियों के चलते विश्वभर में विकसित देशों और व्यक्तिगत क्षेत्रों द्वारा नये-नये उद्योग स्थापित किये जाने से पूँजी का असर छोटे तबके के लोगों पर भी हुआ है। विभिन्न प्रकार की बहुराष्ट्रीय कम्पनियाँ जो अपने व्यापार को ध्यान में रखते हुए तरह-तरह की योजनाएँ निकालती हैं किसानों को अपने फायदे को ध्यान में रखते हुए, ऐसी चीजे उगाने को कहती हैं जो उनके यहाँ नहीं होती। किसान भी अधिक उत्पादन के लिए तरह-तरह के रासायनिक मिश्रण और कीटनाशक डालते हैं। जिससे खेती तो अच्छी हो जाती है किन्तु भूमि धीरे-धीरे बंजर हो जाती है। भुखमरी के सन्दर्भ में आंकड़े बताते हैं कि 90 के बाद से ही जब से नव-उदारवादी आर्थिक सुधारों का कार्यक्रम भारत में शुरू किया गया, प्रति व्यक्ति खाद्यान्न उपलब्धता कम होने लगी थी और वह लगातार कम होती गई। "2002 और 2003 में तो हालत यह हो गई कि प्रति व्यक्ति खाद्यान्न उपलब्धता दूसरे विश्वयुद्ध के दौरान पड़े बंगाल के भयंकर अकाल के वर्षों में जितनी थी, उससे भी कम हो गयी।''8 इस सन्दर्भ में सरकार तर्क देती है कि आर्थिक सुदृढ़ता के चलते लोगों की क्रयशक्ति बढ़ने से वे दूसरी अन्य चीजें अधिक खाते हैं। जबकि आज तक कहीं भी क्रयशक्ति के बढ़ने पर खाद्यान्न प्रयोग में कमी नही देखी गई है। उपन्यास में सुदर्शन मकई को आन्ध्रप्रदेश की किसान आत्महत्याओं के बारे में बताते हुए कहता है कि ''आन्ध्रप्रदेश में किसानों द्वारा आत्महत्या के मामलों में अचानक वृद्धि सन् 1997-98 से शुरू हुई, जब कपास के दाम गिरे और फसलें भी फेल करने लगीं। एक साथ दो पहाड़ सी मुसीबतें, जिनके उपाय दुष्कर थे और किसानों के हाथ में नहीं थे। संख्या के बारे में अलग-अलग आँकड़े थे। एक रिपोर्ट के अनुसार पिछले तीन सालों में 15000 से ज्यादा किसान खुदकुशी कर चुके थे। कारणों के बारे में ज्यादा मतभेद नहीं थे। कुल लागत का लगभग 40 खर्चा बीज का था और उनकी तासीर भी तय नहीं थी। चालीस साल की सिंचाई का इतिहास यह था कि किसानों ने बोरवैल में 12000 करोड़ रूपये झोंक दिये, जबकि प्रदेश सरकार ने मात्र 25,000 करोड़ का निवेश किया। 1975 के 8,20,000 बोरवैल 1999 तक आते-आते तेजी से बढ़कर 22 लाख से ज्यादा हो गये थे, पानी का स्तर जमीन के नीचे लगातार गिर रहा था। एक बोरवैल डालने की लागत 15,000 रूपये आती थी, और 20,000 रूपये का पम्प अलग। अगर पानी न निकला तो दूसरी जगह खोदने का लालच। एक फेल बोरवैल पर बात रुकती नही थी।''9 स्थितियों से पूरी तरह वाकिफ होते हुए भी सरकार कोई बड़ा कदम नहीं उठाती और किसान गाँव के साहूकारों के हाथों शोषित होने को मजबूर हो जाते थे। अति होने के बाद कर्ज से मुक्ति का रास्ता उन्हें आत्महत्या में ही सूझता था।

अपने देश में कृषि व्यवस्था पर दृष्टि डालें तो विकास की सारी सच्चाई सामने आ जाती है। सरकार एक ओर तो विकास के नाम का ढ़ोल पीट रही है और दूसरी ओर स्वयं ही किसानों के शोषण का माध्यम बनी हुई है। सरकार हाथ पर हाथ धरे बैठी हुई है। उन कारणों को दूर करने के बज़ाय उनको और बढ़ावा दे रही है और किसानों की दुर्दशा की वजह प्रकृति का प्रकोप बता रही है। ''यह अनायास नहीं था कि किसानों की आत्महत्याओं की खबरें सबसे पहले आंन्ध्र प्रदेश, महारष्ट्र, कर्नाटक और पंजाब जैसे उन राज्यों से आयी, जहाँ आर्थिक नीतियाँ सबसे पहले लागू की गयी थीं। खेती में बढ़ते जा रहे घाटों के कारण अपेक्षाकृत समृद्ध किसान अगर आत्महत्या करने पर मजबूर हुए, तो पारम्परिक खेती और उससे जुड़े दूसरे धन्धों के विनाश के कारण सीमांत किसान और खेत मजदूर भुखमरी के शिकार हुए।''10

निष्कर्ष :

चैदह उपशीर्षकों में बंटा हुआ यह उपन्यास प्रथम दृष्टया अलग-अलग शीर्षकों के भीतर अलग-अलग कथांश के विस्तृत होने की झलक देता है किन्तु वास्वत में वे उपशीर्षक ही अलग-अलग कथाओं की शुरूआत हैं, अलग से कोई शीर्षक देकर उसे व्याख्यायित करने के बज़ाय शीर्षक स्वयं कथा की शुरुआत करता है। यह उपन्यास की एक संरचनागत विशिष्टता है जो कई उपकथाओं का एक समुच्चय दिखता हुआ भी अन्ततः एक ही कथा कहने के क्रम में लिया गया विराम है। जिसके चलते पाठक नये आकर्षण के साथ पुनः उपन्यास पाठन में तल्लीन होता है। साथ ही कथा की शुरुआत इस रूप में आगे बढ़ती है कि पाठक स्वयं उस उपन्यास कथा का एक हिस्सा बना दिया जाता है। लेखक जीपतक चमतेवद के

तौर पर कहानी सुनाता चलता है जिसकी विशेषता यह है कि पाठक को स्वयं उसी की उपस्थिति की कहानी सुनायी जाती है और पाठक की उपन्यास कथा में पुनः स्वयं को तलाशने और कथा की एक दृश्यात्मक छवि देखते आगे बढ़ने की उत्सुकता बनने लगती है। एक यथार्थ घटना को औपन्यासिक ढाँचे में उतारने का प्रयास यहाँ किया गया है जिसके चलते इसके सृजन में कल्पना का प्रयोग केवल उसी सीमा तक सम्भव था जितने में उसे उपन्यास का रूप दिया जा सके और विषय की गम्भीरता के चलते भाषायी गम्भीरता पूरी अपनी कसावट बुनावट के साथ आना स्वाभाविक है। आवश्यकतानुसार उपन्यास मे कहीं तो वर्णनात्मक शैली का प्रयोग हुआ है और कहीं पूर्वदीप्त शैली में कथा आगे बढ़ी है।

सन्दर्भ

1. माक्र्सवाद और साहित्य लोचन- टेरी ईगलटन (अनु- वैभव सिंह) पृ0-39
2. अकार' (दिस0 -2007-मार्च-2008), 'हलफनामे पर 'अरुणेश नीरन' की समीक्षा (पृ0-19)
3. नया ज्ञानोदय (जनवरी-2007), पृष्ठ –23
4. हिन्दीसाहित्य का इतिहास- आचार्य रामचन्द्र शुक्ल
5. हलफनामे-राजू शर्मा, (पृष्ठ - 175)
6. हलफनामे - राजू शर्मा (पृष्ठ -178)
7. कथन (अप्रैल -जून-2007) (पृष्ठ-57) रमेश उपाध्याय और भारत डोगरा की बातचीत
8. कथन (अप्रैल जून-2007)- उत्सा पटनायक के फ्रीडम फॅार हंगर व्याख्यान माला के अन्तर्गत दिये गये व्याख्यान का कथन द्वारा प्रस्तुत भावानुवाद- (पृष्ठ-62)
9. हलफनामे- राजू शर्मा (पृष्ठ-49)
10. कथन (अप्रैल-जून-2007) में छपे अशोक कुमार पाण्डेय के आलेख 'भूमण्डलीय गाँव में भारतीय किसान से पृष्ठ-68